International Journal of Applied Research 2017; 3(5): 125-127

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(5): 125-127
www.allresearchjournal.com
Received: 23-03-2017
Accepted: 24-04-2017

डॉ0 अनन्त कुमार यादव
अध्यक्ष – दर्शन विभाग,
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरियन्टल फिलोसोफी, वृन्दावन, मथुरा

Correspondence
डॉ0 अनन्त कुमार यादव
अध्यक्ष – दर्शन विभाग,
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरियन्टल फिलोसोफी, वृन्दावन, मथुरा

भारतीय समाज में नारी की स्थिति का दार्शनिक विश्लेषण

डॉ0 अनन्त कुमार यादव

प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व मनीषा में वैज्ञानिक प्रगति और तार्किक शिक्षा के प्रभाव के कारण नारी और पुरूष के सम्बन्धों पर एक नयी बहस का सूत्रपात हुआ है। वस्तुतः तकनीकी प्रगति के कारण श्रम विभाजन शिथिल हुआ और परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व मे नारी विमर्श पर गम्भीर चिन्तन व विश्लेषण होने लगा। लगभग विश्व के सभी देशों व संस्कृतियों में पुरूष – प्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और निर्णय में भागीदारी की स्थिति ठीक नहीं रही है फिर भी देश – काल– परिस्थिति के प्रभाव के कारण छिटपुट कुछ नारीयाँ विभिन्न संस्कृतियों व देशों में प्रभावपूर्ण स्थिति में रही है। किन्तु आमतौर पर नारी की स्थिति संतोषजनक नहीं रही है। ध्यातव्य है कि मनुष्य अपनी स्वार्थी प्रवृत्तियों पर कितना अंकुश लगाया है, वहीं उसकी सभ्यता के स्तर को व्यक्त करता है। यदि किसी समाज में परस्पर सम्बन्धों का आधार स्वार्थ हो और जाति, लिंग, रंग आदि के आधार पर भेदभाव हो तो निश्चय ही वह समाज सभ्यता के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा और ऐसा समाज प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता है। यदि मानव समाज के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सभ्यता के शैशवकाल से ही अन्य भेदों के साथ साथ लिंग भेद भी वर्तमान था। वस्तुतः प्रत्येक देशकाल की संस्कृति एवं रहन सहन से स्पष्ट होता है कि पुरूषों ने स्त्रियों को हमेशा ही अपने से नीचा स्थान दिया।

जहाँ तक भारतीय समाज में नारी की स्थिति का सवाल है तो इसके लिये वैदिक साहित्य, मध्ययुगीन साहित्य व अभिलेख और आधुनिक साहित्य व इतिहास पर दृष्टिपात करना होगा। संहिता, ब्राहमण, आख्यानक, उपनिषद और सूत्र साहित्य ही मुख्य रूप से वैदिक साहित्य है। ईसा पूर्व बारहवीं से ईसा की चौथी शताब्दी के बीच रचित साहित्य द्वारा समाज का जो चित्र उभरकर सामने आता है उसमें नारी को कहीं भी "मनुष्य" नहीं समझा गया है। वस्तुतः नारी को वस्तु के रूप में देखा गया है। मैत्रेयणी संहिता (3/8/3) में कहा गया है कि नारी अशुभ है और यज्ञ करते समय किसी कुत्ते, शूद्र और नारी की तरफ मत देखो। शतपथ ब्राहमण (3/2/4/6) के अनुसार आतिथ्य उत्सव में, युद्ध में, यज्ञ में, उपहार में, दान में और दक्षिणा में गाय, स्वर्ण, अनाज, रथ गण, अश्व के साथ – साथ नारी भी दी जाती थी। नारी को भोग्य वस्तु समझा जाता था। किन्तु ऋग्वेद में कुछ ऐसे आख्यान मिलते हैं जिससे ऋग्वेद कालीन नारी की स्थिति बेहतर दृष्टिगत होती है। जैसे – ऋग्वेद में (7/80/2) कहा गया है कि निर्भीक युवती नेता के रूप में आगे चलती है। इसी प्रकार ऋग्वेद में अन्य जगह (10/95/11) कहा गया है कि विदुषी स्त्री पत्नी के रूप में पती को शिक्षा भी देती है। जबकि एक अन्य स्थान पर ऋग्वेद में ही स्त्री को इन्द्राणी, शत्रुनाशक, विजयिनी और प्रशासक कहा गया है (10/159/05)। इसी काल में लोपामुद्रा, विश्ववारा, घोषा, अपला, गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि उस युग की विदुषी स्त्रीयाँ रही है। उल्लेखनीय है कि इस काल में सद्योबध् और ब्रह्मवादिनी – ये दो प्रकार की छात्राएं हुआ करती थी और इस प्रकार धर्म, दर्शन, यज्ञ, मीमांसा व तर्क जैसे गूढ़ विषयों में भी स्त्रियाँ पारंगत थी। वस्तुतः वैदिक युग में एक ओर जहाँ बाल विवाह की प्रथा नहीं थी, वहीं दूसरी और स्वयंवर व विधवा विवाह के प्रचलित होने के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर्याप्त संतोषजनक थी।

जबकि उत्तरवैदिक युग में स्त्री की स्थिति में भेदपरक विकास हुआ और सूत्रों व स्मृतयों के काल में आकर स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी उन पर नाना प्रकार के बन्धन और अवरोध लगाये गये। जन्म से मृत्यु तक वह पुरूष के नियन्त्रण में रखने के लिये निर्देशित की गयी पूर्वमध्यकाल तक आते आते उस पर नियन्त्रण और भी कठोर हो गया जिसके परिणामस्वरूप बाल विवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, तथा जन्म के समय बालिकाओं की हत्या जैसे कुकृत्य दृष्टिगत होने लगे। उल्लेखनीय है कि ऋगवेद काल में घोषा, लोपामुद्रा और उपाला जैसी स्त्रियों ने अनेक रचनाओं की रचना भी की थी। जबकि ऋग्वेद कालीन समाज पितृसत्तात्मक था।

इस प्रकार वैदिक काल में नारी की स्थिति संतोषजनक थी किन्तु उत्तरवैदिक काल में नारी की स्थिति में निरन्तर गिरावट आती गयी। निष्कर्षतः प्राचीन भारत में सामान्यतया नारी की स्थिति बहुत हीन बनी रही।

ध्यातव्य है कि मध्ययुगीन भारत मे बहुसंख्यक वर्ग हिन्दू था जो ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र – इन चार वर्णों और सैकड़ों जातियों में बटा हुआ था। इस मध्ययुगीन भारत के हिन्दू समाज में नारी की स्थिति धीरे – धीरे और अधिक शोचनीय व निम्नतर होती गयी। यही कारण है कि बाल विवाह, दहेज प्रथा, सतीप्रथा, बहुविवाह, देवदासी प्रथा, बालिका हत्या और विधवा विवाह न होना आदि ऐसी कुप्रथायें थी जिनसे भारतीय स्त्रियां पीड़ित थी। सम्पत्ति में भी स्त्रियों का कोई हिस्सा नहीं था। उल्लेखनीय है कि मध्ययुगीन भारतीय समाज का (मध्ययुगीन) दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग मुसलमानों का था, जो धर्म, धन, सम्प्रदाय, व्यवसाय आदि अनेक आधारों पर बटे हुये थे। यथा – शिया, सून्नी, सूफी आदि आदि। मुसलमानों में भी नारी की स्थिति वास्तविक धरातल पर दयनीय ही थी और पर्दा प्रथा, बहुविवाह, शिक्षा का अभाव मुसलमान स्त्रियों से सम्बन्धित गम्भीर कुरीतियाँ थी। इस प्रकार मध्ययुगीन भारत में नारी की दशा और दिशा अत्यन्त निम्न स्तर की हो गयी। यह और बात है कि इसकाल में भी कुछ छिटपुट स्त्रियाँ हुयी जो साहित्य, कला, धर्म आदि अनेक क्षेत्रों में बड़े प्रभावशाली कार्य की।

जबकि आधुनिक भारत में नारी की निम्नतर चली आ रही स्थिति को सुधारने के लिये ठोस प्रयास आरम्भ हुये। इस दिशा में पहला बड़ा कदम राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध हेतु कानून पास करा के रखा। इसी कड़ी में विधवा विवाह को प्रोत्साहन, बालविवाह पर प्रतिबन्ध और स्वतन्त्र भारत के संविधान में अनुच्छेद – 15, अनु. 16, अनु.39.अनु. 325 आदि को समाविष्ट कर नारी सशक्तिकरण की दिशा में ठोस व प्रभावी प्रयास हुये हैं। यही नहीं, पश्चिमी देशों के नारीमुक्ति आन्दोलनों के समानान्तर भारत में नारी सशक्तिकरण आन्दोलन अत्यन्त प्रभावशाली रूप ले चुका है। चाहे अवसर की समानता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का न्यायपूर्ण वितरण की बात हो या फिर पुरूष की तरह स्त्री को भी मनुष्य की गरिमा प्रदान करने की हो, वस्तुत : इन दोनों स्तरों पर ठोस प्रयास हुये हैं व हो रहे हैं। इस प्रकार बढ़ती शिक्षा, जागरूकता और लिंगभेद के खिलाफ हो रहे नारी आन्दोलनों के फलस्वरूप सम्प्रति भारत में नारी की अवस्थिति में गुणात्मक सुधार दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि लिंग भेद नारी से जुड़ी उपर्युक्त समस्याओं को केन्द्र में रखकर एक दार्शनिक व वैचारिक विमर्श प्रारम्भ हुआ जिसे नारीवाद या फैमिनिज्म के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः फैमिनिज्म या नारीवाद एक ऐसा आन्दोलन है जो स्त्रियाँ की समस्याओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है और उनकी सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक एवं निजी क्षेत्र में पुरूषों के साथ समानता का समर्थक है। इस आन्दोलन का दार्शनिक आधार समानता, स्वतन्त्रता और न्याय का सिद्धान्त है। ध्यातव्य है कि नारीवाद या फैमनिज्म को तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है :–

(1) उदारवादी धारा, जिसके समर्थक जॉन लाक, जे.एस.मिल, मारग्रेट फूलर और बैटी फराइडन है। सामान्यतया यह धारा स्त्री को एक लैगिंक प्राणी न मानकर एक मानव प्राणी मानती है। इनका कहना है कि स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने चाहिये जिससे ये आर्थिक व अन्य स्तरों पर आत्म निर्भर हो सके। इसी प्रकार विवाह करने या न करने की स्वतन्त्रता और पैतृक सम्पत्ति में पुरूषों के समान अधिकार होने चाहिये।

(2) आमूल परिवर्तनवादी धारा, जिसके समर्थक शुलामिथ, फायरस्टोन जैसी महिलाएँ आती हैं। इनका कहना है कि स्त्री–पुरूषों के शारीरिक अन्तर को एक जैविक तथ्य क्रमशः – मानते हुये स्त्री को बच्चे पैदा करने व पालने वाली मशीन समझ लिया जाता है और एक ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण निर्मित किया जाता है जिससे लड़कों को डाक्टर, इन्जीनियर व विधिवेत्ता और लड़कियों का नर्स व सेक्रेटरी बनने को प्रोत्साहन मिले। इसलिए इस विचारधारा की अनुशंसा है कि लिंग आधारित श्रमविभाजन समाप्त किया जाये और ऐसी स्वायत्त बस्तियाँ बसायी जाय जहाँ पुरूष गौड़ भूमिका में हो।

(3) समाजवादी धारा, जिसकी समर्थक अँग्रेज महिला एस0रोबाथम है। इनका कहना है कि परम्परागत परिवार की धारणा समाप्त कर एक वर्गहीन समाजवादी सामज की स्थापना की जाये।

उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्त पर पश्चिमी देशों में जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसे नारी मुक्तीकरण आन्दोलन कहा गया, जबकि भारत व विकासशील देशों में जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसे नारी सशक्तीकरण आन्दोलन कहा गया। ज्ञातव्य है कि पश्चिम के नारी मुक्ति आन्दोलन (Woman freedom Movement) से भारतीय नारी आन्दोलन या विकासशील नारी आन्दोलन में अन्तर है। विकासशील देशों व भारत के नारी आन्दोलनों का मुख्य मुद्दा आर्थिक सामाजिक असमानता और विभेद है। यहाँ की नारी पुरूष की प्रतिद्वन्द्वी नहीं, बल्कि सहयोगिनी के रूप में उसके कन्धे के साथ कन्धा मिलाते हुये देश की आजादी के लिये, राष्ट्र की मुक्ति के लिये लड़ी और आज भी उस आजादी को बनाये रखने के लिये, लड़ रही है। यही कारण है कि हमारे यहाँ महिला दिवस संघर्ष दिवस न होकर प्रेरणा दिवस के रूप में मनाया जाता है। वस्तुतः महिला दिवस (23 अक्टूबर) दक्षिण भारत के कित्तूर की रानी चेनम्मा के जन्मदिन को और मातृदिवस (22 फरवरी) कस्तूरबा जी के जन्मदिन को प्रेरणा स्त्रोत के रूप में मनाया जाता है। भारतीय नारीवादी आशारानी व्होरा का कहना है कि भारतीय महिलाओं के आन्दलनों को पश्चिम के विमेन्स – लिव के साथ जोड़कर कभी नहीं देखना चाहिये। आधुनिकता और पश्चिमी नकल के मोह में यदि भारतीय महिलाएँ इस तर्क पर अपने अधिकार – आन्दोलन चलाएँगी तो वे सफल भी नहीं होंगी (भारतीय नारी – दशा दिशा , पृष्ठ – 155–158)।

प्रश्न उठता है कि नारी सशक्तिकरण अथवा लैंगिक समानता का वास्तविक दार्शनिक आधार क्या है ? वस्तुतः लिंग समानता की अवधारणा का आधार पौराणिक आख्यान अर्द्ध नारीश्वर से स्पष्ट हो जाता है। अर्धनारीश्वर की कथा से यही सिद्ध होता है कि लिंग भेद होते हुये भी अभेद है। एक में ही दोनों है। विष्णुप्रभाकर भी अपने उपन्यास "अर्धनारीश्वर" में दिखाते है कि :– "नारी की स्वतन्त्र सत्ता का नारी की सेक्स – इमेज से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका अर्थ है, समान अधिकार समान दायित्व, एक स्वस्थ समाज के निर्माण को दोनों समान रूप से भागीदार है। अर्धनारीश्वर का प्रतीक इस कल्पना का साकार रूप है, एक दूसरे से विसर्जित नही, एक दूसरे से स्वतन्त्र, फिर भी जुड़े हुये " (पृष्ठ – 64, 321)।

उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा का कोई लिंग नहीं होता। मेरी – तेरी सबकी आत्मा (चेतन व्यक्तित्वपरक सत्ता) उस परमब्रहम का ही अंश है। इसी प्रकार विवेक चूड़ामणि में कहा गया है कि :–

जाति नीति कुल गोत्र दुरंग, नाम रूप गुण दोष वर्जितम्।
देशकाल विषयातिवर्ति पर्व, ब्रहम तत्वमसि भावयात्मनि।।
असंगाऽहम. नंगोऽहम. भंगुरः।
प्रशान्तोऽहम. नन्तोऽहमतान्तोऽहं चिरन्तनः।।

अर्थात ..... मैं असंग हूँ, अशरीर हूँ, अलिंग हूँ और अक्षय हूँ तथा अत्यन्त शान्त अनन्त और पुरातन हूँ .....। इन उद्धरणों से यहीं सिद्ध होता है कि स्त्री – पुरूष में विभेद नहीं

है। दोनों में समानता इस आधार पर है कि दोनों एक ही सत्ता के दो अंश है। एक होते हुये भी दो है और दो होते हुये भी तात्विक दृष्टि से एक ही है।

निष्कर्षतः सम्प्रति भारतीय समाज में नारी की अवस्थिति में गुणात्मक परिवर्तन सकारात्मक दिशा में हो रहा है। इसके लिये घर की चाहरदीवारी से लेकर उच्च अध्ययन संस्थानो तक मूल्यपरक व्यवहारिक शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, आर्थिक स्वावलम्बन और परिवार – समाज – व्यक्ति की मानसिक अवस्थिति (Mind Setup) में बदलाव के माध्यम से ठोस प्रयास की आवश्यकता है इस दिशा में बहुत कुछ किया जा चुका है और बहुत कुछ किया जा रहा है। इस प्रकार भारतीय समाज में नारी सशक्तीकरण व लिंग समानता की दिशा में चल रहे प्रयास गम्भीर रूप से परिलक्षित हो रहा है। हमारा निष्कर्ष है कि अन्ततः स्त्री पुरूष दोनों में सहकार हो, सहजीवन हो। सहजीवन का अर्थ है – "स्त्री पुरूष दोनों का निर्भय होकर एक दूसरे की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करके एक दूसरे को पाना। ऐसी स्थिति में नारी का पुरूष जैसा बनना आवश्यक नहीं है। इन दोनों में भिन्नता और पूरकता आवश्यक है। दोनों की भिन्न भिन्न प्रकृति से ही परस्पर पूरकता और जीवन की पूर्णता सम्भव है। स्त्री व पुरूष दोनों मनुष्य है और यह मनुष्यता गरिमामय व "सत्यं शिवं सुन्दरम" को चरितार्थ करने वाली हो।